आन्तरिक ऊर्जा का विकास

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय राजस्थान

ऊर्जा का अर्थ प्राणशक्ति है। मन, वचन, काया और शरीर का हर सिस्टम, हर अंग प्राण ऊर्जा से संचालित होता है। प्राण ऊर्जा के समाप्त होते ही शरीर मृत हो जाता है। इसलिए प्राण ऊर्जा आवश्यक है। प्राण ऊर्जा शरीर को शक्ति प्रदान करती है। प्राण ऊर्जा से शरीर चलता है। भीतरी शक्ति से ही बाहर का जगत संचालित होता है। आत्मा बहुत ही सूक्ष्म है उसे न तो देखा जा सकता है और न ही स्पर्श किया जा सकता है। आत्मा के द्वारा ही शरीर का संचालन होता है। वही शक्ति का केन्द्र है। जैसे मैमोरी कार्ड छोटा सा होता है किन्तु उसके अन्दर इतनी शक्ति है कि उसके अन्दर एक पुस्तकालय समा सकता है। वैसे ही आत्मा भी आंतरिक रूप से पंचेन्द्रियों को शक्ति प्रदान करती है। आत्मा के शरीर से निकलते ही सब निष्क्रिय हो जाते हैं। हम जो कुछ भी देखते हैं वह बाहर का सच है। बाहर के सच का ज्ञान पंचेन्द्रियों के द्वारा होता है। इन्द्रियां बाह्य वस्तुओं का ज्ञान कराती हैं। इसके अतिरिक्त अंदर का भी सच है। वह सत्य आत्मकेंद्रित है। वही वास्तविक सत्य है। इन्द्रियों के द्वारा देखा हुआ सत्य पूर्ण सत्य नहीं होता। इसी कारण हमें संशय, भ्रम, विभ्रम इत्यादि हुआ करते है। एक ही वस्तु में भिन्न–भिन्न प्रकार का ज्ञान कभी–कभी हो जाता है। हिरण को गर्मी के दिनों में चमचमाती हुई रेत में पानी का भ्रम हो जाता है और इसी पानी की खोज में वह दौड़ता–दौड़ता मर जाता है और पानी की प्राप्ति उसे नहीं होती। इसी को मृग मरीचिका कहते हैं। यह संसार भी ऐसा ही है। मानव इस संसार में दौड़ता रहता हैं। किन्तु उसे शांति नहीं प्राप्त होती। कोई इस संसार को सत्य कहता है, कोई असत्य कहता है और कोई सत्य और असत्य का मिथुनीकरण कर देता है। एक ही वस्तु के विषय में लोगों की भिन्न–भिन्न धारणाएं हो जाती हैं। जिससे सत्य का स्वरूप भी बदल जाता है। इस संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं, उनके स्वरूप को निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। यह संसार संबंधों का संसार है। एक आदमी किसी का बेटा, किसी का बाप, किसी का भाई, किसी का चाचा, किसी

का मामा इत्यादि संबंधों से जुड़ा हुआ है। यह संबंध ही माया कहलाता है। आदमी संसार में रहकर कर्म करता है। पुण्य–पाप करता है और अपने कर्म के अनुसार फल भोगता है। जिसका जैसा कर्म रहता है उस कर्म के अनुसार उसे दूसरी योनि प्राप्त होती है। यह भवचक्र चलता रहता है।

यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो भिन्न–भिन्न दर्शनों ने इसे भिन्न–भिन्न नाम दिया है। कोई इसे माया कहता है, कोई इसे अविद्या कहता है, कोई इसे कर्मबंधन कहता है। यह संसार ही मायाजाल है। मायाजाल से निकलने का प्रयास करना ही वास्तविक सत्य की खोज है। कुछ जीव इस मायाजाल से निकलने का प्रयास करते है और कुछ इसे वास्तविक सत्य मानकर इस संसार का आनन्द लेते है। इंद्रियों के विषय बहुत ही आकर्षक है। आंख को रूप चाहिए, कान को शब्द चाहिए, नासिका को गंध चाहिए, जिह्वा को स्वाद चाहिए और त्वचा को स्पर्श। विषय इंद्रियों को अपनी तरफ इस प्रकार से खींचते है कि बड़े–बड़े संन्यासी, यति, मुनि, ऋषि और महर्षि भी अपने मार्ग को छोड़कर इंद्रियों के वशीभूत हो जाते है और अपने जीवन के आदर्श को ही भूल जाते है। इंद्रियों को वश में करने के लिए विषयों से विरक्ति आवश्यक है। काम, क्रोध, मद, लोभ सभी प्राणियों में होता है। किन्तु इनको जो जीत लेता है वही महावीर कहलाता है। भगवान महावीर ने बाहर के भी सत्य को देखा और आंतरिक सत्य को भी। किंतु उन्हें बाहर का सत्य निःसार लगा। इसलिए उन्होंने आंतरिक सत्य को प्राप्त करने का संकल्प किया और उस सत्य को जाना। उस सत्य को जानने के बाद वह जितेन्द्रिय हो गये। इस सत्य को उन्होंने आत्म सत्य कहा। आत्म सत्य ही आंतरिक सत्य है और वास्तविक सत्य है। जो आत्मा को जान जाता है वह सबकुछ जान जाता है। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है।

आत्मा ही एक ऐसा शाश्वत तत्त्व है जिसके आधार पर मानव अपने अस्तित्त्व को सिद्ध करता है। आत्मा ऊर्जा का स्रोत है। मानव जन्म बहुत दुर्लभ है, इसे पाकर जो मनुष्य आत्मोपलब्धि नहीं करता वह बहुत बड़ी भूल करता है। जब तक यह दुर्लभ मानव शरीर विद्यमान है, तभी तक शीघ्र से शीघ्र परमतत्त्व को जान लिया जाय तो सब प्रकार से कुशल है। यदि यह

अवसर व्यर्थ हो गया तो महान् विनाश हो जायेगा——बार—बार मृत्यु रूप संसार के प्रवाह में बहना पड़ेगा। संसार के त्रिविध तापों और विविध शूलों से बचने का यही एक परम साधन है कि जीव मानव जन्म में दक्षता के साथ साधन परायण होकर अपने जीवन को सदा के लिये सार्थक कर ले। मनुष्य जन्म के सिवा और जितनी योनियां हैं, सभी केवल कर्मों का फल भोगने के लिये ही मिलती हैं। मानव जीवन का परम लक्ष्य आत्मामृत की प्राप्ति ही है। वह आत्मा दो प्रकार की है, एक जीवात्मा दूसरी परमात्मा। परमात्मा या ईश्वर सर्वज्ञ है, और एक है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न—भिन्न व्यापक और नित्य है। आत्मा नित्य शुद्ध—बुद्ध मुक्त है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। यही परम सत है। आन्तरिक ऊर्जा से ही बाह्य जगत संचालित होता है। पुद्गल शक्तिहीन होता है। शक्ति के अभाव में यह जड़ कहलाता है। आत्मा के संयोग से यह सृष्टि चलती है। अतः शक्ति आत्मा में है। सभी पदार्थों को शक्ति आत्मा से ही मिलती है।